VISHVA–JYOTI R. N. NO. 1/57 ISSN 0505-7523
REGD. NO. PB-HSP-01
CURRENCY PERIOD: (1.1.2015 TO 31.12.2017)

६५, १-२

अप्रैल-मई –2016

विश्वज्योति

सन्त कबीर विशेषांक

भाग - १

विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान

साधु आश्रम, होश्यारपुर

एक प्रति का मूल्य : २५ रुपये

Scanned with CamScanner

संत कबीर की बानी में श्रीमद्भगवद्गीता का प्रतिबिम्ब

-डॉ० डायालाल मोकरिया

हमारा देश संतों का देश है। ऋषि-मुनिओं का देश है। सामान्य मनुष्य संसार की माया में फंस जाता है और रागद्वेषयुक्त अपना जीवन बना कर दु:खी हो जाता है। संसार में उसका आना निरर्थक बन जाता है। ऐसे लोगों को मार्गदर्शन करने के लिए भगवान् संतों का स्वरूप लेकर आते हैं। संतों का जीवन रागद्वेष से परे होता है। वह संपूर्ण सृष्टि के कल्याण की कामना करते हैं। संतशिरोमणि कबीर जी ही कहते हैं कि-

साधु बड़े परमारथी घन ज्यों बरसै आय।
तपन बुझावैं और की अपनो पारस लाय।।[1]

अर्थात् संतजन बड़े परोपकारी होते हैं, वह बारिश की तरह बरस जाते हैं। वह अपनी दिव्यशक्ति से पारसमणिं की तरह हमारा त्रिविधताप को दूर करते हैं और शांति प्रदान करते हैं।

पृथ्वी पर जब धर्म में जड़ता आती है, लोग अंधश्रद्धा में डूब जाते हैं और मनुष्य-जीवन का आनन्द नष्ट हो जाता है तब संतों, सत्पुरुषों, भगवान् के अवतारों, महात्माओं आदि का यहां जन्म होता है और मनुष्यत्व का दीपक प्रकट करके वे मनुष्य-जीवन को गौरवान्वित बनाते हैं। इस संसार का आनंद लेनें का मार्गदर्शन करते हैं। ऐसे ही संत शिरोमणि कबीर साहब थे।

ई.सं. १३९८ में ज्येष्ठ मास की पूर्णिमा के दिन एक प्रकाश पुंज के रूप में क्रांत-द्रष्टा, निर्गुणी उपासक, तत्त्वदर्शी, हिन्दू-मुस्लिम एकता का नारा देने वाले संतों की श्रेणी में, संतों में महान् संत सद्गुरु कबीर साहेब ने काशी के पास लहर तालाब नामक स्थान पर जन्म लिया। इसी दिन वे नीरू-नीमा जुलाहा दम्पत्ति को शिशु के रूप में मिले थे।[2] एक ऐसी भी मान्यता प्रचलित है कि कबीरदास ने स्वामी रामानन्द से बचपन

1. कबीर वचनावली, पृ. ६६
2. कोली व शाक्य वंश की उत्पत्ति, पृ. ८०

में ही दीक्षा ली थी।[3]

मध्यकाल को भक्तिकाल कहा जाता है। समाज अन्धविश्वास, छुआ-छूत, शोषण आदि सामाजिक बुराईयों से जकड़ा हुआ था। ऐसे समय में संत कबीर साहब ने 'ढाई अक्षर प्रेम का' उद्घोष करके पीड़ित और भटकती हुई मानवता को सच्चाई और भलाई का मार्ग दिखाया। वह स्वयं पढ़े-लिखे नहीं थे। उन्होंने स्वयं ही कहा है कि-

मसि कागद छुओ नहिं कलम गही नहिं हाथ।[4]

लेकिन उनकी रचना भक्तजनों के कंठ में रहती थी। कबीर के नाम पर अनेक रचनाएं मिलती हैं लेकिन कुछ रचनाओं की प्रमाणिकता की समीक्षा करने की आवश्यकता है। तो भी कबीर के नाम पर जो विचार मिलते हैं वह प्रशस्य हैं। कबीर के चिन्तन में सर्वधर्म समभाव दिखाई पड़ता है। स्मृतिग्रन्थों में धर्म का लक्षण दिया है।[5]

कबीर साहब ने विविध सुभाषितों के माध्यम से लोगों को समझाने का प्रयत्न किया है। परमात्मा की सर्वव्यापकता के बारे में कबीर साहब कहते हैं कि-

जेता घट तेता मता बहु बानी बहु भेख।
सब घट व्यापक ह्वै सोई आप अलेख।।[6]

अर्थात् इस संसार में जितने देह उतने धर्म में मतमतांतर हैं। भाषा एवं वेशभूषा में भी ऐसी ही स्थिति है। किन्तु घट-घट में व्याप्त परमात्मा तो एक ही है। श्रीमद्भगवद्गीता में कहा है कि पूर्ण पुरुषोत्तम परमेश्वर को अनन्य भक्ति से प्राप्त किया जा सकता है। वह अपने धाम में विद्यमान रहते हुए भी सर्वत्र व्याप्त रहते हैं और उनमें सब स्थित रहता है।[7] भगवान् की सर्वव्यापकता को कबीर जी ने सरल रीति से प्रस्तुत किया है। भिन्न-भिन्न लोग अपने अनुकूल धर्म का आचरण करते हैं। वेश, भाषा आदि भी अनुकूलता के अनुसार ही अपनाते हैं किन्तु सबका गंतव्यस्थान एक ही है। जिसके पास ऐसी समझ आ जाये वह परमतत्त्व का आनन्द पा सकता है। कबीर साहब का दार्शनिक विचार चिन्तनीय है। वह कहते हैं कि-

अच्छे पुरुष इक पेड है निरंजन वाको डार।
तिरदेवा साखा भये पात भया संसार।।[8]

अर्थात् अक्षयपुरुष (परमात्मा) विराट् वृक्षरूप है। निरंजन (निर्गुणरूप) उसकी बड़ी जड़ (डाल) है। तीन (सगुण) देवता

3. कबीर वचनावली, पृ. ५
4. कोली व शाक्य वंश की उत्पत्ति, पृ.८१
5. मनुस्मृति, ६.९२
6. कबीर वचनावली, पृ. ६
7. गीता-८/२२
8. कबीर वचनावली, पृ. २

(ब्रह्मा, विष्णु और महेश) उसकी ही शाखायें हैं और संपूर्ण संसार उसके पर्ण हैं। यहां गीता का अश्वत्थवृक्ष का रूपक याद आ जाता है। इस संसार का मूल ऊपर है और इस मूल में परमात्मा ही है। जो मनुष्य इस संसार को सच्ची तरह से जानता है वह वेद का ज्ञाता है।[9]

परमात्मा की सगुण उपासना और निर्गुण उपासना का समन्वय श्रीमद्भगवद्गीता में दिया गया है। अर्जुन का प्रश्न था कि सगुण और निर्गुण उपासना में से भगवत्प्रिय उपासना किस को गिनना चाहिए। तब भगवान् कहते हैं कि दोनों उपासनाएं मुझे पसंद हैं।[10]

यहां भगवान् ने कहा है कि मेरा साकार रूप मन को स्थिर कर के मेरी श्रद्धापूर्वक उपासना करने वाला भक्त परम सिद्ध है, तो भी विभिन्न इन्द्रियों को संयम में रखकर निराकार अव्यक्त की उपासना करने वाला जीवात्मा भी मुझे ही प्राप्त करता है। यहां हिन्दू-धर्म की सगुण उपासना और मुस्लिम-धर्म की निर्गुण उपासना का समन्वय किया है उनको कबीर साहब ने अपने चिन्तन में प्रस्तुत किया है-

सगुण की सेवा करो निर्गुण का करु ज्ञान।
निर्गुण सगुण के परे तहै हमारा ध्यान।।[11]

अर्थात् देव, जीव इत्यादि सगुण की सेवा करो और उसके साथ प्रभु का निर्गुण तत्त्वस्वरूप का ज्ञान प्राप्त करो। हमारा ध्यान तो निर्गुण-सगुण से परे रहा हुआ परमतत्त्व में लगा हुआ है। यहां कबीर जी ने सगुण-निर्गुण का आवश्यक समन्वय किया है।

परमात्मा हमारे अन्दर ही है। उसको बाहर ढूंढने की आवश्यकता नहीं है। गीता में कहा है कि भगवान् सबके हृदय में रहा हुआ है और वह ही सबको स्मृति, ज्ञान और विस्मृति प्रदान करते हैं। सबके लिए ज्ञातव्य भी वह है और सबका ज्ञाता भी वह ही है।[12] इस बात को कबीर जी कहते हैं-

तेरा सांइ तुज्झमें ज्यों पुहुपनमें बास।
कस्तूरी का मिरग ज्यों फिर फिर दूढै घास।।[13]

अर्थात् तेरा परमात्मा पुष्प में रही हुई सुगंध की तरह तुझ में ही है लेकिन अज्ञानवशात् कस्तूरीमृग की तरह तू अपने अन्दर वर्तमान परमात्मा को बाहर ढूंढता है। यहां कबीर जी ने परमात्मा की सर्वव्यापकता को और सब में अन्तर्भाविता को संक्षिप्त में

9. श्रीमद्भगवद्गीता-१५/१
10. वही-२३/२,३,४
11. कबीर वचनावली, पृ. २
12. गीता-१५/१५
13. कबीर वचनावली, पृ. ४

Scanned with CamScanner

सरलता से सदृष्टांत समझा दी है। मनुष्य का मन चंचल है इसलिए मनुष्य को मन को नियंत्रित करना चाहिए। गीता में भगवान् कहते हैं कि मन चंचल और अस्थिर वृत्ति वाला है। इसलिए जहां-तहां भटकता रहता है। मनुष्य को उसे सर्वथा अपने काबू में रखना चाहिए।[14]

योगी लोग शान्त मन वाले होते हैं। परमात्मा में मन स्थिर कर के परमसुख प्राप्त करते हैं।[15] कबीर साहब भी कहते हैं-

मन के मते न चालिए मन के मते अनेक।
जो मन पर असवार है सो साधु कोई एक।।[16]

अर्थात् मन के मतानुसार न चलिए, क्योंकि मन के तो अनेक मत हैं, मन को नियंत्रित कर के जो मन पर सवार होता है वह ही संत है। यहां कबीर जी ने मन की अप्रतिम शक्ति की बात की है। यहां किया हुआ मनोवैज्ञानिक चिन्तन आधुनिक मनोविज्ञान के तथ्यों को भी समर्थित करता है। सिंगमन्ड फ्राईड आदि मनोविज्ञानिक मन का जागृत, अर्धजागृत एवं अजागृत- तीन प्रकार करके विस्तृत संशोधन प्रस्तुत करते हैं। यहां कबीर जी ने भी मन की विशेषता अच्छी तरह से स्पष्ट की है।

मनुष्य अपने अज्ञान के वश हो कर भगवान् की रची हुई माया में चक्कर लगाता है। गीता में भगवान् कहते हैं कि यंत्र पर आरूढ़ हुए जीवों को भगवान् अपनी माया से भ्रमण करवाते हैं।[17] कबीर साहब भी कहते हैं कि-

कबीरा माया मोहनी मोहे जान सुजान।
भागे हूं छुटै नहीं भरि भरि मारै बान।।[18]

अर्थात् माया मोहिनी है। वह बड़े विद्वान् को भी नहीं छोड़ती, वह सज्जन को भी मुग्ध कर देती है। क्योंकि वह मोहरूपी बाणों का भरपूर प्रहार करती है। इस माया से बचने के लिये भगवान् की शरण लेना चाहिए। गीता में भगवान् कहते हैं कि- भगवान् की त्रिगुणमयी माया को तैरना कठिन है तो भी भगवान् की शरण जो जाता है वह माया को तैर जाता है।[19] इस बात को कबीर जी दोहे में प्रस्तुत करते हैं-

जिन को साई रंग दिया कभी न होई कुरंग।
दिन दिन बानी आगरी चढै सवाया रंग।।[20]

---

14. गीता-६/२६
15. वही, ६/२७
16. कबीर वचनावली, पृ. १३४
17. गीता, १८/६१
18. कबीर वचनावली, पृ. ११०
19. गीता, ७/१४
20. कबीर वचनावली, पृ. ११२

अर्थात् जिसे प्रभु ही अपने रंग से रंग लेते हैं। वह कभी कुरंगी नहीं बनेगा अर्थात् उसको कभी माया का रंग नहीं लगेगा। उसकी कान्ति दिन-प्रतिदिन बढ़ती ही जायेगी। उसका प्रभुप्रेम अत्यधिक हो जायेगा। अर्थात् संसार की माया से बचने के लिये भगवत्परायण बनना चाहिए।

इस प्रकार कबीर साहब का दार्शनिक चिन्तन भी माननीय था। आन्तरिक प्रेरणा से उन्होंने जो तत्त्वदर्शन प्रकट किया है, वह श्रीमद्भगवद्गीता में स्वाभाविक रूप से दिखाई पड़ता है। इस से यह भी फ़लित होता है कि महापुरुषों का तत्त्वचिन्तन समान ही होता है। सामाजिक परिस्थितियों को ध्यान में रख कर चिन्तन के प्रसंगों और शब्दों में भिन्नता आ सकती है लेकिन विचारों में ऐक्य ही दिखाई पड़ता है। श्रीमद्भगवद्गीता का तत्त्वदर्शन कबीर जी की बानी में प्रकट हो कर सामान्य जनसमाज तक पहुंचा दिया गया है। यह कबीर जैसे संतों की विशेषता है।

श्री सोमनाथ संस्कृत यूनिवर्सिटी, वेरावल (गुजरात)

Scanned with CamScanner